अध्याय – 15

तौलिये : उपेन्द्रनाथ अश्क

जन्म – सन् 1910 ई.
मृत्यु – सन् 1996 ई.

उर्दू में लेखन–यात्रा प्रारम्भ करने वाले उपेन्द्रनाथ अश्क हिन्दी में लेखन हेतु मुंशी प्रेमचन्द की प्रेरणा से अग्रसर हुए। राष्ट्रीय आन्दोलन के झंझावाती दौर में उनकी रचनाधर्मिता का विकास हुआ।

उन्होंने कहानी, काव्य, नाटक, एकांकी, संस्मरण, आलोचना एवं अनुवाद इन सभी विधाओं में भरपूर कलम चलाई। नाटक एवं एकांकी विधा को नये आयाम देने वाले अश्कजी ने जनजीवन में व्याप्त रूढ़िवादिता, जड़ता एवं आडम्बरों पर निर्ममतापूर्वक प्रहार करके मानसिक भावों व अन्तर्द्वन्द्वों का बखूबी चित्रण किया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क की प्रमुख रचनाएँ हैं –गिरती दीवारें, शहर में घूमता आईना, गर्म राख, सितारों के खेल (उपन्यास), सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ, जुदाई की शाम के गीत, काले साहब, पिंजरा (कहानी संग्रह), लौटता हुआ दिन, बड़े खिलाड़ी, जय पराजय, स्वर्ग की झलक, भँवर (नाटक), अंधी गली, मुखड़ा बदल गया, चरवाहे (एकांकी संग्रह) एक दिन आकाश ने कहा, प्रातःप्रदीप, दीप जलेगा, बरगद की बेटी, उर्म्मियाँ (काव्य) मंटो मेरा दुश्मन, फिल्मी जीवन की झलकियाँ (संस्मरण) अन्वेषण की सहयात्रा तथा हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय (आलोचना) आदि।

प्रस्तुत एकांकी तौलिये में शिष्टाचार, सभ्यता व तहज़ीब के नाम पर फैल रहे आडम्बर व खोखलेपन को बखूबी अभिव्यक्त किया गया है। हमारी जीवन–शैली में कृत्रिमता व दिखावटीपन पसरता जा रहा है। रिश्तों की प्रगाढ़ता शिथिल होती जा रही है। स्वच्छता व सलीका पसंदगी का दिखावा हमारी आत्मीयता पर बोझस्वरूप है। इन दिखावों में रिश्तों की गर्माहट लुप्त होती जा रही है। सहजता एवं सरलता से जीवन जीने में जो खुशी एवं आनन्द मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन का रहस्य बाह्य तड़क– भड़क में नहीं बल्कि अन्तर की दृढ़ता में है।

तौलिये

पात्र : वसन्त, चिन्ती, मधु, मंगला, सुरो
स्थान : नई दिल्ली

(पर्दा वसन्त के ड्राइंगरूम में उठता है। ड्राइंगरूम न बहुत बड़ा है, न छोटा। बहुत सजा हुआ भी नहीं है। वसन्त एक अढ़ाई सौ मासिक पाता है। पर नई दिल्ली के अढ़ाई सौ.....। लेकिन वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए टेलीफोन लगा है,इसलिए कमरा भी सजा है– बाई दीवार के साथ एक मेज़ लगी है,उस पर काग़ज़–पत्रों के अतिरिक्त टेलीफोन रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाज़ा है, जो अन्दर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अँगीठी है, किन्तु आग शायद इसमें नहीं जलती, क्योंकि अँगीठी का कपड़ा अत्यन्त सुन्दर है,उस पर सजावट की चीज़ें भी रखी हुई हैं–वैसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरों में होती है– लेकिन वे बिखरी नहीं हैं और करीने से लगी हुई हैं। दो पीतल के गुलदान दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अँगीठी के दोनों कोनों पर रखे हुए हैं। इसी अँगीठी के कपड़े की लम्बी झालर को छूता हुआएक रेडियो सेट, नीचे एक छोटी–सी मेज़ पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिजाइन अँगीठी के कपडे से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है।

अँगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेण्डर लटक रहा है–जिससे कि मेज़ पर बैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेण्डर को एक नज़र देखने से मालूम होता है कि नवम्बर का महीना है।

अँगीठी के बराबर एक दरवाज़ा है जो रसोई में जाता है। इस दरवाज़े से जरा हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेंत के कौच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई पड़ी है। सेट की गद्दियाँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अँगीठी के कपड़े से मैच करता है।

सामने, दीवार के बाई ओर, कौच से जरा हटकर एक दरवाज़ा है जो स्नानगृह को जाता है।

बाई दीवार के साथ शृंगार की मेज़ लगी है जिससे वसन्त और मधु दोनों अपने टायलेट का काम ले लेते हैं। इसके ऊपर खूँटियों पर तौलिए टंगे है। मेज के दोनों ओर एक–दो कुर्सियां पड़ी हैं। दाई दीवार में इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर जाता है।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृंगार की मेज पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं। वास्तव में वह हजामत बना चुका है और तौलिए से मुँह पोंछ रहा है। तभी रसोई के दरवाजे से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।)

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया। मैं कहती हूँ आप....

वसन्त : (मुँह पोंछते–पोंछते रुककर) ओह! यह कमबख्त तौलिए! मुझे ध्यान ही नहीं रहता। बात यह है (हंसता है) कि मदन के तौलिएँ छोटे है और हजामत...।

मधु : (चिढ़कर) और हजामत के तौलिए कैसे हैं? जी! जरा आँख खोलकर देखिए हजामत के तौलिए कितने रंगीन हैं बीसियों तो धारियाँ पड़ी हुई हैं उनमें और मदन के कितने सादे और.....।

वसन्त : लेकिन रोएँदार तो ....।

मधु : (व्यंग से) दोनों हैं। जी! आँखे बन्द करके आदमी दोनों का अन्तर बता सकता है। मैं कहती हूँ....।

वसन्त : (निरुत्तर होकर) वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओं, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहाँ है?मुझे दिखाई ही नहीं दिया।

मधु : (खूँटी पर टँगा तौलिया उठाकर) यह तो टँगा है सामने फिर भी.....।

वसन्त :मैंने ऐनक उतार रखा है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया.....। (खिसियानी हँसी हँसता है।)

मधु : जी, आपकी दुनिया ! जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं। ऐनक हो तो कौन–सा आपको कुछ दिखाई देता है।

(मुँह फुला धम से कौच में धँस जाती है। और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती लगती है। वसन्त हजामत का सामान रखता है फिर अचानक उसकी ओर देखकर)

वसन्त : तुमने फिर मुँह फुला लिया। नाराज़ हो गई हो ?

मधु : (व्यंग से हँसकर) नहीं मैं नाराज नहीं।

वसन्त : तुम्हारा खयाल है कि मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता?

मधु : (उसी तरह हँसकर) मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : (सामान वैसे ही छोड़कर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए) मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेने की निपुणता तुम्हें प्राप्त नहीं। तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएँ तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती हैं, पर मैंने तुम्हें अँधेरे में नहीं रखा। अपने सम्बन्ध में, अपने स्वभाव के सम्बन्ध में, सब कुछ बता दिया था। मैंने अपने सब पत्ते..... ।

मधु : मेज़ पर रख दिये थे। (उसी तरह व्यंग से हँसकर) मैं कब इन्कार करती हूँ?

वसन्त : तुम्हारी यह हँसी कितनी विषैली है। इसी तरह विष घोल–घोलकर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।

मधु : (चुप रहती है)।

वसन्त : मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मैं स्वयं सफ़ाई का बड़ा भारी समर्थक हूँ।

मधु : (हँसती है) इसमें क्या सन्देह है?

वसन्त : और मुझे स्वयं गन्दगी पसन्द नहीं।

मधु : (सिर्फ हँसती है)।

वसन्त : पर मैं तुम्हारी तरह 'अरिस्टोक्रेटिक'(Aristocratic) वातावरण में नहीं पला और मुझे नज़ाकतें नहीं आती। हमारे घर में सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे।

मधु : आप मुझे अरेस्टोक्रेट' कहकर मेरा उपहास करते हैं। मैं कब कहती हूँ, दस–दस तौलिये हों।

वसन्त : दस और किस तरह होते हैं?नहाने का अलग। हजामत बनाने का अलग। हाथ–मुँह पोंछने का अलग। और फिर तुम्हारे और मदन के ..... ।

मधु : (पहलू बदलकर) लेकिन मैं पूछती हूँ, इसमें दोष क्या है?जब हम खरीद सकते हैं तो क्यों न दस–दस तौलिये रखें। कल, परमात्मा न करे, हम इस योग्य न रहें, तो मैं आपको दिखा दूँ कि किस तरह ग़रीबी में भी सफ़ाई रखी जा सकती है–तौलिये न सही, खादी के अँगौछे सही–कुछ भी रखा जा सकता है। लेकिन जिस तौलिए से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोंछ सकता है?

वसन्त : मैं कहता हूँ, हम छःह भाई एक ही तौलिए से बदन पोंछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी..... ।

वसन्त : हममें से किसी को कभी कोई बीमारी नहीं हुई।

मधु :पर चर्म रोग..... ।

वसन्त : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं...और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता। रोग बढ़ता है कमज़ोरी से, जब हमारे शरीर में रोग से लोहा लेनेवाले लाल कीटाणु कम हो जाते हैं, तब। चूहा सैदनशाह की बात जानती हो?

मधु : चूहा सैदनशाह.....!

वसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफ़सर चूहा सैदनशाह गये। उनमें अमेरिका के राक–फ़ैलर–ट्रस्ट

के कुछ डाक्टर भी थे। लंच के समय उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी। बैरे ने आकर बताया कि गाँव में कोई कुआँ नहीं, लोग जौहड़ का पानी पीते हैं। डाक्टरों को विश्वास न आया। क्योंकि जौहड़ का पानी मैला चीकट था। ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हो। और चूहा सैदनशाह के जाट हृष्ट–पुष्ट, लम्बतड़ंगे.....।

मधु : तो क्या आप चाहते हैं, हम जौहड़ का पानी पीना शुरू कर दें ?(हँसती है)

वसन्त : (उठकर कमरे में घूमता हुआ) तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हँसी बिखेर सकती हो,(उसके सामने रुककर) तुम्हें मालूम हो कि अमेरिका के डाक्टर वहीं रहे। एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण किया। मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुक़ाबला करनेवाले लालकीटाणु रोग की मदद करनेवाले कीटाणुओं से कहीं ज्यादा हैं। तब उन्होंने वहाँ के लोगों की खुराक का निरीक्षण किया। पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत–सी बीमारियों के कीटाणुओं को मारने की शक्ति है। बीमारी का मुक़ाबला इन नज़ाकतों और नफ़ासतों से नहीं होता बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति
पैदा करने से होतो है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिविरोध कर सके। (फिर घूमने लगता है)

मधु : मैंने चूहा सैदनशाह की बात सुन ली। मैले तौलियों से शरीर में लाल कीटाणु फैलें या श्वेत, मुझे इससे मतलब नहीं। मैं तो इतना जानती हूँ कि बचपन ही से मुझे सफ़ाई पसन्द है। मामा जी.....।

वसन्त : (मेज़ के कोने का सहारा लेकर) तुमने फिर अपने मामा और मौसा की कथा छेड़ी। माना वे विलायत हो आये हैं,किंतु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो वे कहते हैं वह वेदवाक्य है। उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे, उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूल से तौलिया पेश कर दिया। (मधु के पास जाकर) उन्होंने दाँत निपोर दिये (नकल उतारते हुए) ''मैं किसी दूसरे के तौलिए से हाथ नहीं पोंछता''–और वे अपने रूमाल से हाथ पोंछने लगे। मैं पूछता हूँ अगर वे उस तौलिए से हाथ पोंछ लेते तो उन्हें कौन–सी बीमारी चिमट जाती ?

मधु : अब यह तो.....।

वसन्त : और तुम्हारे मामाजी.....(वापस जाकर फिर मेज़ पर बैठ जाता है) तुम्हारे जाने के एक दिन बाद मैं उनके यहाँ गया। रात वहीं रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ़्तर आना था। कहने लगे–''हजामत यहीं बना लो।'' मैंने कहा – ''मैं एक दिन छोड़कर हजामत बनाता हूँ, मुझे कोई ऐसी जरूरत नहीं।'' जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा–''अच्छा बनाये लेता हूँ।'' तब वे एक निकृष्ट–सा रेज़र ले आये और कहने लगे (नकल उतारते हुए) –''मैं अपने रेज़र से किसी दूसरे को हजामत नहीं बनाने देता, इसीलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेज़र रख छोड़ा है''– क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा, अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा–'' रहने दीजिए मैं घर जाकर शेव कर लूँगा।''

मधु : मामा जी.....।

वसन्त : (अपनी बात जारी रखते हुए) इस पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेज़र से हजामत बनाने पर विवश कर दिया; किन्तु मेरे हजामत बनाने के बाद मेरे ही सामने ब्लेड़ उन्होंने लान में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेज़र को Sterilise कर लाये (नकल उतारते हुए) मामा जी.....।

मधु : मैं कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं, आपको बुरा लगा। स्वच्छता की भावना भी काव्य और कला ही की भाँति.....।

वसन्त : (आवेग में उसके पास आकर) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो। तुम्हसरे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की नफ़ासत में नफ़रत की भावना काम करती है–शरीर से, गन्दगी से, जीवन से नफ़रत की!

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नहीं। मुझे शरीर से भी घृणा नहीं और मैं सच कह दूँ, मुझे गन्दगी से भी घृणा नहीं।

मधु : (हँसती है) तो फिर कूड़ों के ढेरों पर बैठिए !

वसन्त : (फिर कुर्सी पर जा बैठता है और कुर्सी को और समीप ले आता है) मुझे गन्दगी से घृणा नहीं; किन्तु मैं गन्दगी पसन्द नहीं करता– बड़ा नाजुक–सा फ़र्क़ है। यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज़ गन्दगी से दो–चार होना पड़ेगा, फिर इससे घृणा कैसी ?जिन ग़रीबों को तुम अपने बरामदे के फ़र्श पर भी पाँव न रखने दो, मैं उनके पास घंटों बैठ सकता हूँ।

मधु : (हँसती है)

वसन्त : और मैंने ऐसे गंदे इलाकों में जीवन के निरन्तर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी स्वच्छता की सनक तुम्हें गुज़रने तक न दे। समझीं!

मधु : (वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए) पर अब तो आप विपन्न नहीं। अब तो आप गंदे इलाक़ों में नहीं रहते। विपन्नता की विवशता को मैं समझ सकती हूँ किन्तु गंदेपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की वस्तु है।

वसन्त : तो तुम्हारे विचार से मैं स्वभाव से गंदा हूँ।

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ।

वसन्त : (खड़ा हो जाता है) ऐसे दिन मुझ पर आये हैं, जब एक बनियान पहने मुझे कई दिन गुज़र जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो बार बनियान बदल लेता हूँ। अगर यह गंदेपन की आदत है तो..... ।

मधु : (उसी हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : स्वच्छता बुरी नहीं, पर तुम तो हर चीज को सनक की हद तक पहुँचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ है।(फिर कमरे में घूमने लगता है) बनियानों और तौलियों की कैद मैंने मान ली, किंतु यदि मैं गलती से बनियान न बदल पाऊँ, या गलत तौलिया ले लूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं स्वभाव से गंदा हूँ और मेरे इस स्वभाव पर तुम्हें मुँह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषैली हँसी बिखेरना चाहिए!

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : (रेडियो के पास से) तुमने अपने आपको इन मिथ्या बन्धनों में इतना जकड़ लिया है कि मेरा ज़रा सा खुलापन भी तुम्हें अखरता है। अपने सिद्धान्तों को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया है। ऊषी और निम्मो.....

मधु : (बुनना छोड़ देती है) आपने फिर ऊषी और निम्मो की बात चलाई। ऊषी और निम्मो..... ।

वसन्त : (हँसते हुए) कल मिल गई बाज़ार में। मैंने पूछा–''निम्मो आई नहीं, तुम इतने दिनों से।'' कहने लगीं–''हमको चची से डर लगता है।''(हँसता है)

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मैं उन्हें खा जो जाती हूँ।

वसन्त : (तिपाई के पास से) खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ हैं..... ।

मधु : बच्चियाँ !(व्यंग्य से हँसती है)।

वसन्त : (उसके व्यंग्य को सुना–अनसुना करके तिपाई पर बैठते हुए) हँसना उनका स्वभाव है। वे हँसेगी तो बेबात की बात पर हँसेगी और तुम्हारा ऐटीकेट– बस दबे–दबे घुटे–घुटे फिरो– ऊँह! (बेज़ारी से सिर हिलाकर उठता है) जो आदमी जी भर खा–पी नहीं सकता। हँस–हँसा नहीं सकता, वह जीवन में कर ही क्या सकता है। चिन्ताओं और आपत्तियों के बन्ध नही क्या कम हैं जो जीवन को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड़ दिया जाए– यह न करो, वह न करो; ऐसे न बोलो, वैसे न बोलो– इन आदेशों का कहीं अन्त भी है।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नारायण एक ही लिहाफ़ में बैठ जाते थे। ज़रा कल्पना तो करो– सर्दियों की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रज़ाई घुटनों पर ओढ़े, चार–पाँच मित्र बैठे हैं। गप्पें चल रही हैं। सुख–दुःख की बातें हो रही हैं। वहीं चाय आ जाती है। साथ–साथ बातें होती हैं, साथ–साथ चुस्कियाँ लगती हैं– इस कल्पना में कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते हैं। अलग–अलग कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। एक दूसरे पर बोझ मालूम होता है। (जोश से) चिड़िया तक तो फटकने नहीं देतीं तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ़ में घुटा जाता हूँ। (जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है और हजामत का सामान ठीक से रखने लगता है।)

मधु : मैं तकल्लुफ़ स्वयं पसन्द नहीं करती। पर जब दूसरों को सफ़ाई का कुछ भी खयाल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आप ही बताइए– कितने लोग हैं, जिन्हें सफ़ाई की आदत है ?कितने हैं जो हमारी तरह पाँव धोकर रज़ाइ में बैठते हैं ?

वसन्त : (वहीं से) पाँव धोने की मुसीबत रज़ाई में बैठने का लुत्फ़ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। मनुष्य स्वभाव से ही स्वच्छता का प्रेमी है। मैं गंदे लोगों से घृणा करती हूँ।

(फिर स्वेटर बुनने लगती है।)

वसन्त : (मुड़कर) घृणा– यही तो मैं कहता हूँ। तुम्हें मुझसे घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है। तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है।

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) यह आप कह सकते हैं।

वसन्त : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है– मेरे खाने–पीने से, उठने–बैठने से, हँसने–बोलने से– मैं जब हँसता हूँ , सीना फुलाकर हँसता हूँ और इसीलिए ऊषी और निम्मो..... ।

मधु : (स्वेटर को फेंककर) आपने फिर ऊषी और निम्मो की कथा छेड़ी। मुझे हँसना बुरा नहीं लगता। पर समय–कुसमय का भी ध्यान होना चाहिए। उस दिन पार्टी में आते ही ऊषी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आँखें बन्द कर ली। कोई समय था उस तरह हँसी–मज़ाक का। मुझे हँसी–मज़ाक से घृणा नहीं, अशिष्टता से घृणा है।

वसन्त : ऊषी.....

मधु : परले सिरे की अशिष्ट और असभ्य लड़की है। मदन की वर्षगांठ के दिन वे सब आए थे। निम्मो इतनी चंचल लड़की है, पर वह तो बैठ गई एक ओर, यह नवाबज़ादी सेंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टाँगे पसारे

और उसके गंदे सेंडल– मेरी साड़ी के बिलकुल समीप आ गए। आप इस अशिष्टता को शौक से पसन्द करें मैं तो इसे कदापि पसन्द नहीं कर सकती। जिसे बैठने, उठने,बोलने का सलीका नहीं, वह मनुष्य क्या पशु है।

वसन्त : (गरजकर) पशु! तो तुम मुझे पशु समझती हो?तुम मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओं को बाँधकर रखना चाहती हो कठिन सिद्धान्तों की बेड़ियों में। ताकि उसकी रूह ही मर जाए। मुझे यह सब पसन्द नहीं और इसलिए तुम मुझसे घृणा करती हो। तुम्हारी इस विषाक्त हँसी में, मैं जानता हूँ, कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सचमुच पशु न बन जाऊँ। अभी मेरा जी चाहा था कि इस ज़लील से तौलिए को उठाकर बाहर फेंक दूँ और.... और....मेरा जी चाहा करता है कि मैं तुम्हारी इस हँसी का गला घोंट दूँ। घृणा– तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो– मुझे पशु समझती हो!

मधु : (स्वेटर उठाते हुए भरे गले से) आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं। अपनी कल्पना से मेरे दिल में वे बातें देखते हैं, जो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नहीं, इसे मैं ही जानती हूँ; पर आपको मुझसे जरूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मैं जानती हूँ। क्यों कर ली, यह भी जानती हूँ। लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नहीं बताता कि आपको मुझसे नफ़रत नहीं। इसका क्रोध चाहे अब आप मेरी सफ़ाई पर निकालें, चाहे मेरी पोशाक या मेरे स्वभाव पर!

वसन्त : तुम.....

मधु : मेरा ख़याल था, मैं आपको सुख पहुँचा सकूँगी। आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हूँ कि मेरे समस्त प्रयास विफ़ल हैं....आपको इस गन्दगी, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है। आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफ़ाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूँगी। मैं आज ही चली जाऊँगी।

(उठ खड़ी होती है–टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। वसन्त जल्दी से जाकर चोंगा उठाता है।)

वसन्त : हैलो, हैलो, जी, जी!

मधु : (नौकरानी को आवाज़ देते हुए) मंगला !

मंगला : (स्नानगृह की ओर के दरवाजे से आती है) जी बीबी जी !

मधु : मेरा बिस्तर तैयार कर और मेरा ट्रंक इस कमरे में ले आ।

मंगला : बीबी जी आप.....

मधु : मैं जो कहती हूँ उठा ला।

(मंगला चली जाती है। वसन्त ''जी, जी बहुत अच्छा!'' कहते हुए चोंगा रख देता है और हँसता हुआ आता है।)

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो। मुझे पहली गाड़ी से बनारस जाना है। अभी साहब ने आदेश दिया है। अपना सामान बाद में बाँधना। (हँसता है।)

(पर्दा गिरता है)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है। कमरा वही है। सामान भी वही है, सिर्फ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज़ थी, वहाँ एक पलंग बिछा हैऔर टेलीफोन उसके सिरहाने एक तिपाई पर रखा है। मेज़, ड्रेसिंग टेबुल की जगह चला गया है और शृंगार की मेज़, अपनी कुर्सी के साथ दाएँ कोने में सरक गई है।

पलंग पर मधु लिहाफ़ घुटनों पर लिये दीवार के सहारे अन्यमनस्क–सी आधी बैठी, आधी लेटी है।
कुछ क्षण बाद वह कैलेण्डर की ओर देखती है। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है। जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं।
बाहर का दरवाज़ा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है। लिहाफ़ को कंधों तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है– ''मंगला, मंगला !''
लेकिन आवाज़ इतनी हल्की है कि शायद मंगला तक नहीं जाती। मधु रज़ाई लेकर लेट–सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है।)
मंगला : बीबी जी, यह आप उदास–उदास क्यों हैं?
मधु : (लेटे–लेटे ज़रा सिर उठाकर) मंगला यह किवाड़ बन्द कर दो बर्फ़–सी हवा अन्दर आ रही है।
मंगला : (किवाड़ बन्द करते हुए) मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने बीबी जी ?
मधु : यों ही कुछ तबीयत उदास है मंगला !
मंगला : कोई पत्र आया बाबू जी का ?
मधु : आया था। शायद आज–कल में आ जाएँ !
मंगला : तो फिर.....
मधु : (विषाद से हँसकर) तबीयत कुछ भारी–भारी–सी है। शायद सर्दी के कारण.....
(दरवाज़े पर दस्तक होती हैं)
मधु : (ज़रा उठकर) कौन ?
सुरो : (बाहर से) दरवाज़ा तो खोलो।
मधु : (बैठकर) मंगला, ज़रा किवाड़ खोलना।
(मंगला दरवाज़ा खोलती है। सुरो और चिन्ती आती हैं।)
मधु : (रज़ाई परे करके) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?
सुरो : आज ही सवेरे यहाँ उतरी हैं।
चिन्ती : माता जी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का खयाल था कि दिल्ली भी देखते चलें।
मधु : ठहरी कहाँ हो ?
चिन्ती : कनॉट पैलेस में मलिक चाचा जी के यहाँ। देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आये तो.....
मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा। इतने दिनों से मैं कह रही थी कि दिल्ली आओ तो.....
सुरो : सबसे पहले तुम्हीं से मिलने आई हैं। माता जी कहती थीं कुतुबमीनार.....
चिन्ती : मैंने कहा कुतुबमीनार एक तरफ़ और मधु बहिन एक तरफ़.....
(मधु क़हक़हा लगाती है।)
सुरो : और फिर दो घंटे से मारी–मारी फिर रही हैं तुम्हारी तलाश में।
मधु : लेकिन पता तो मेरा.....
चिन्ती : सुरो बहिन भूल गई। इन्होंने ताँगेवाले को भैरों के मन्दिर चलने के लिए कह दिया।
मधु : (आश्चर्य से) भैरों के मन्दिर.....

चिन्ती : और ताँगेवाला ले गया सब्ज़ी मण्डी, कहीं तीस हजारी के गिर्जे के पास।

मधु : गिर्जे के पास.....

(ज़ोर से क़हक़हा लगाती है।)

चिन्ती : (अपनी बात जारी रखते हुए) तब इन्हें खयाल आया कि मन्दिर तो हनुमान का है। फिर नई दिल्ली वापस आई।

(मधु फिर ज़ोर से हँसती है।)

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो यों ही परेशान होते रहे। घर तो तुम्हारा पास ही था।

मधु : तुम लोग भी, मैं कहती हूँ.....

(ज़ोर से हँस पड़ती है।)

सुरो : यह इतना हँसना तुम कहाँ से सीख गई ?तुम तो थीं जन्म की सिड़ी....

चिन्ती : भाई साहब ने सिखा दिया इतने जोर से कहकहे लगाना?कहाँ हैं वे ?

मधु : बनारस गए हुए हैं, दो महीने से। वहाँ के फर्म का मैनेजर बीमार पड़ गया था। शायद आज–कल में आ जाएँ।

चिन्ती : अच्छे तो हैं ?

मधु : अच्छे हैं। मौज में हैं; लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ?इधर आ जाओ बिस्तर पर। (नौकरानी को आवाज़ देती है) मंगला! मंगला!

(सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं।)

मधु : अरे कुर्सियाँ छोड़ो। बस चली आओ इधर। पलँग पर बैठते हैं लिहाफ़ लेकर.....

सुरो : लेकिन मेरे पाँव.... (हँसकर) और मैं धो नहीं सकती इन्हें।

मधु : अरे क्या हुआ है तुम्हारे पाँवों को ?जुराबें तो पहन रखी हैं तुमने ?

चिन्ती : पर तुम्हारा बिस्तर ?

मधु : कुछ नहीं होता बिस्तर को। मेरे बिस्तर का खयाल छोड़ो। बस चली आओ इधर। यह किवाड़ बन्द कर दो। बर्फ़–सी हवा अन्दर आ रही है।

(मंगला आती है।)

मंगला : आपने आवाज़ दी थी बीबी जी ?

मधु : मंगला, चाय बनाकर लाओ !

(चिन्ती किवाड़ बन्द कर देती है। तीनों घुटनों पर लिहाफ़ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं।)

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने।

मधु : (चौंककर खुशी से) लेफ़्टिनेंट वीरेन्द्र के साथ ?

चिन्ती : वह लम्म–सलम्मा लमटीक–सा आदमी। जोर की हवा चले तो उड़ता चला जाये। मैं तो सोंचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी मुटल्लो से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूँ कि पुष्पा उसे पसन्द ही कैसे करती है। चेहरे पर तो उसके मनहूसियत बरसती रहती है और मालूम होता है जैसे.....

चिन्ती : वर्षों स्नानगृह का मुँह न देखा हो।

(सब हँसती हैं–मंगला चाय की ट्रे लाती है।)

मंगला : कहाँ लगाऊँ चाय बीबी जी ?

मधु : वहाँ मेज़ पर रख दो और एक–एक प्याला बनाकर हमें दो। यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो।

सुरो : (आश्चर्य से) मधु !

मधु : अरे उठकर कहाँ जाओगी। यहीं बैठी रहो। इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबुल पर जाने में आ चुका चाय का मज़ा.....

चिन्ती : (उठने को प्रयास करते हुए हलके–से क्रोध से) मधु !

मधु : हटाओ भी। अब बैठी रहो यहीं।

चिन्ती : (व्यंग्य से) तो विवाह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले हैं। अब डाइनिंग टेबुल के बदले बिस्तर पर ही चाय पीती हैं और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फ़रमाती हैं।

सुरो : कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागती और कहाँ यह कि.....

मधु : अरे क्या रखा है इस तकल्लुफ़ में। सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म–नर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टबुल पर जाए। लो बिस्कुट लो और चाय का प्याला उठाओ ! ठंडी हो रही है।

(सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते–पीते बातें करती हैं।)

सुरो : मैं पूछती हूँ – अगर चाय बिस्तर पर गिर जायें ?

मधु : तो क्या हुआ ?चादर धुलवाई जा सकती है। और फिर किसी दिन सहसा पेश आनेवाली दुर्घटना के भय से कोई अपने रोज के सुख–आराम को तो नहीं छोड़ देता।

सुरो : सुख–आराम (व्यंग्य से हँसती है) तुम बिस्तर पर चाय पीने का बहुत बड़ा सुख समझती हो.....(फिर हँसती है)।

चिन्ती : और फिर सभ्यता, संस्कृति....

मधु : मानव की आधारभूत भावनाओं पर नित्य नये दिन चढ़ते चले जाने वाले पर्दों का नाम ही तो संस्कृति है। सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दुसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा। फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे।

सुरो : यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख–समझकर मनुष्य फिर पहले की भाँति बर्बर बन जाएँ ?

मधु : नहीं बर्बर बनने की क्या जरूरत है? मनुष्य सीमाओं को छूता हुआ क्यों चले। मध्य का मार्ग क्यों न अपनाये। न इतना खुले कि बर्बर दिखाई दे, न इतना बँधे कि सनकी। महात्मा बुद्ध ने कहा था.....

सुरो : (हँसकर) महात्मा बुद्ध! तुम्हें हो क्या गया है; सदियों पुराने गले–सड़े विचारों को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो!

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के सिद्धान्त कल काम न देंगे और कल के परसों। बर्नार्ड शा.....

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) बर्नार्ड शा, हटाओ, क्या बेमजा बहस ले बैठी हो। मंगला चाय का एक–एक कप और बनाओ।

चिन्ती : बस भई अब तो चलेंगे। इतनी देर हो गई हमें यहाँ आये। मंगला हाथ धुला दो हमारे।
मधु : अरे भई एक–एक प्याला तो और लो।
सुरो : नहीं मधु अब चलेंगे। वहाँ सब लोग परेशान हो रहे होंगे। हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे हैं। एक–आध घंटे में लौट आयेंगे और यहाँ आते ही आते दो घंटे लग गये।
चिन्ती : स्नानगृह किधर है। हम वहीं हाथ धो आते हैं।
मधु : अरे क्या धोओगी इस सर्दी में हाथ ?
सुरो : नहीं भई हाथ तो हम जरूर धोयेंगे। चिप–चिप कर रहे हैं।
मधु : तो मरो! (मंगला से) मंगला, इनके हाथ धुलवा दो।
सुरो : बाथरूम.....
मधु : अरे बाथरूम में जाकर क्या करोगी ? इधर बरामदे में ही धो लो।
(किवाड़ खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं। मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है।)
सुरो : (गीले हाथ लिये वापस आकर) तौलिया कहाँ है ?
मधु : तौलिया नहीं दे गई मंगला ?अच्छा वह ले लो जो खूँटी पर टँगा है।
सुरो : (क्रोध से) मधु तुम भली–भाँति जानती हो.....
मधु : मंगला, इन्हें अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो।
(चिन्ती भी गीले हाथ लिए आ जाती है। मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं।)
मधु : मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठतीं !
चिन्ती : नहीं भई अब कल आने का प्रयास करेंगी।
(हाथ पोंछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती हैं।)
मधु : प्रयास नहीं, ज़रूर आना। भूलना नहीं। और खाना भी यहीं खाना।
सुरो : हाँ, हाँ अवश्य आयेंगी। (मधु उठने का प्रयास करती है।) अब उठने का तकल्लुफ़ न करो। बैठी रहो अपने गर्म लिहाफ़ में। दरवाज़ा हम बन्द किए जाती हैं। बर्फ़–सी हवा अन्दर आ रही है।
(हँसती हुई दरवाज़ा बन्द करके चली जाती हैं।)
मधु : मुझे एक प्याला और बना दो, मंगला।
मंगला : (प्याला बनाकर देते हुए) ये कौन थी बीबी जी ?
मधु : मेरी सहेलियाँ थी। कालेज में हम साथ–साथ पढ़ती थीं और होस्टल में भी साथ–साथ रहती थीं। (कुछ क्षण चुपचाप चाय पीती है, फिर) मंगला!
मंगला : जी, बीबी जी।
मधु : मंगला, ज़रा मेरी ओर देखकर बता तो, क्या मैं सचमुच बदल गई हूँ?
मंगला : (चुप रहती है।)
मधु : (जैसे अपने आप से) मेरी सहेलियाँ कहती हैं, मैं बदल गई हूँ पड़ोसिनें भी यही कहती हैं! मेरी ओर ज़रा देखकर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल चुकी हूँ।
मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूँ बीबी जी, मैं क्या जानूँ।
मधु : (अपनी बात जारी रखते हुए) मेरी आँखों में देखकर बता, मंगला, क्या ये बदल सकी हैं ?इनमें घृणा की

झलक तो नहीं ?

मंगला : (आश्चर्य से) घृणा.....

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ़ और बनावट तो नहीं ?

मंगला : (उसी आश्चर्य से) बनावट, तकल्लुफ़.....

मधु : तकल्लुफ़, बनावट, नफ़रत– तीनों को मैं अपने दिल से निकाल देना चाहती हूँ (जैसे अपने आप से) दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझसे लड़कर चले गये थे।

मंगला : क्या कह रही हैं, बीबी जी आप! बाबू जी तो.....

मधु : (शून्य में देखते हुए) उनका क्रोध अभी तक नहीं उतरा। इन दो महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन.....

मधु : (व्यंग्य से) '' मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशल का पता देना!'' या '' मैनेजर बीमार हैं। ज्यों ही स्वस्थ हुए चला आऊँगा।'' इन्हें तुम पत्र लिखना कहती होगी। वे मुझसे नाराज़ हैं। उनका खयाल है कि मैं उनसे घृणा करती हूँ।

मंगला : (कुछ भी समझने में असफल होते हुए) घृणा, घृणा ?

मधु : यदि मैं बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूँ जहाँ सफ़ाई और सलीके का बेहद खयाल रखा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष ?(लगभग भरे हुए गले से)वे सफ़ाई और व्यवस्था की मेरी इच्छा को घृणा बताते हैं। मैं बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सब सफ़ाई–वफ़ाई को छोड़ दूँ, इन तकल्लुफ़ात को तिलांजलि दे दूँ, पर अपने इस प्रयास में कभी–कभी मुझे अपने आपसे घृणा होने लगती है। (लम्बी साँस भरकर) बचपन से जो संस्कार मैंने पाये हैं उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं।(अचानक दृढ़ता से) पर नहीं। मैं इन सब वहमों को छोड़ दूँगी। पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूँगी। वे समझते हैं, मैं उनसे नफ़रत करती हूँ।

मंगला : आप क्या कह रही हैं, बीबी जी ?

मधु : वे समझते हैं– मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हर बात से घृणा करती हूँ। (सिसकने लगती है) मैंने इन दो महीनों में अपने आपको बदल डाला है। अपने आपको बिलकुल बदल डाला है।

(दरवाज़ा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है।)

वसन्त : हेल–लो मधु! क्या हाल–चाल है जनाब के ?(मंगला से) मंगला ताँगे से सामान उतरवाओ। और (जेब से पैसे निकालते हुए) और यह लो डेढ़ रुपया! ताँगेवाले को दे दो।

(मंगला पैसे लेकर चली जाती है।)

वसन्त : (फिर मधु के पास आते हुए) कहो भाई क्या हाल–चाल है, यह सूरत कैसी रोनी बना रखी है ?जी कुछ खराब है क्या ?

मधु : (जो इस बीच पलँग से उतर आई है–हँसने का प्रयास करते हुए) सूखा जाड़ा पड़ रहा है। जुकाम है मुझे तीन–चार दिन से।

वसन्त : मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। सेहत–सेहत–

सेहत–दुनिया में जो कुछ है सेहत है। जीवन में तुम्हारी यह सफ़ाई और सुघड़ता, ये नज़ाकतें इतना काम न देंगी , जितना सेहत। यदि यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम कीं और अगर ठीक है तो फिर इनकी कोई ज़रूरत नहीं। (अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनन्द लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो) अरे यह कायापलट कैसी ?यह पलँग ड्राइंगरूम में कैसे आ गया ?और यह ट्रे और प्याले...।

मधु : मैंने पलँग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रों को ज़रा भी कष्ट न हो। मज़े से लिहाफ़ लेकर बैठिए। टेलीफ़ोन आपके सिरहाने रहेगा।

वसन्त : (उल्लास से) वाह ! मैं कहता हूँ तुम....तो, तुम....तो....बेहद अच्छी हो।

मधु : मैं स्वयं अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ़ में बैठी रही हूँ।

वसन्त : (आश्चर्य–मिश्रित उल्लास से) सच !

मधु : (उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार–भरी दृष्टि से देखते हुए) और चाय भी हमने यहीं पी है।

वसन्त : (प्रसन्नता से) व...ा...ह! मैं कहता हूँ – अब तुम जीवन का रहस्य समझ पाई हो। जीवन का भेद बाह्य तड़क–भड़क में नहीं, अन्तर की दृढ़ता में है। यदि, यदि हमारी प्रतिरोध–शक्ति, हमारी Power of Resistence क़ायम है.....।

मधु : चाय भी अब आप यहीं पिया कीजिएगा, अपने नर्म–नर्म बिस्तर पर !

वसन्त : (अत्यधिक उल्लास से) वाह–वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो कि मेरे लिए चाय का पानी रखे।

मधु : अब तो आप नाराज़ नहीं हैं ?

वसन्त : (आश्चर्य से) नाराज़ !

मधु : आप इतने दिनों तक मन में गुस्सा रख सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वसन्त : (और भी आश्चर्य से) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा।

वसन्त : पर मैंने.....।

मधु : पत्र लिखे थे । जी! ''मैं कुशल से हूँ। अपनी कुशल का पता देना''– इसे पत्र लिखना कहते होंगे!

वसन्त : (जोर से कहकहा लगाता है) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ ? पगली ! तुमसे भी कभी कोई नाराज़ हो सकता है।

मधु : पर दो पंक्तियाँ....।

वसन्त : दो पंक्तियाँ लिखने का भी अवकाश मिल गया तुम इसी को बहुत समझो।

मधु : अच्छा आप जाकर हाथ–मुँह धो लीजिए। मैं चाय तैयार करती हूँ।

वसन्त : मैं कहता हूँ , तुम कितनी....तुम कितनी....तुम कितनी अच्छी हो।

मधु : (मुस्कराते हुए) अच्छा–अच्छा चलिए, पहले हाथ–मुँह धोकर कपड़े बदलिए।

वसन्त : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की पख लगाई ?

मधु : क्यों कपड़े न बदलिएगा?एक रात और एक दिन गाड़ी में सफ़र करके आये हैं। मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है। चलिए, चलिए जल्दी हाथ–मुँह धोकर कपड़े बदलिए! मैं इतने में चाय तैयार करती

हूँ। (वसन्त को स्नानगृह के दरवाजे की ओर धकेल देती है,और नौकरानी को आवाज़ देती है) मंगला, मंगला!

मंगला : (दूसरे कमरे के दरवाजे से झाँकती है) जी बीबी जी!

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं ?

मंगला : जी बीबी जी!

मधु : यह ट्रे और प्यालियाँ उठा। पानी तो चाय का ठंडा हो गया होगा। बाबू जी उधर हाथ–मुँह धोने गये हैं। मैं और पानी रखती हूँ। इतने में यह पानी फेंककर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल।

(मंगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चमचा गिर जाता है।)

मधु : (कुछ तीखे स्वर में) यह चमचा फिर फ़र्श पर गिरा दिया तूने। बीस बार कहा है कि चमचा न गिराया कर फ़र्श पर, चिप–चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर, इस जगह को गीले कपड़े से धो डाल !

वसन्त : (स्नानगृह से) अरे भई साबुन कहाँ है ?

मधु : ध्यान से देखिए। वहीं तखती पर पड़ा है।

वसन्त : (वहीं से) और तौलिया ?

मधु : हाथ–मुँह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोंछ लीजिए। (मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है और चुपचाप फ़र्श साफ़ करने लगती है) तू फ़र्श साफ़ करके चायदानी और प्यालियाँ धो डाल और मैं पानी रखती हूँ चाय का।

(रसोई–दरवाज़े से चली जाती है। कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फ़र्श साफ़ किए जाती है। फिर वसन्त हाथ–मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीनें चढाए, गुनगुनाता हुआ आता है–

हिंडोला कैसे झूलूँ , मेरा जिया डोले रे।

मैं झूला कैसे झूलूँ , मेरा जिया डोले रे।

और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े उस तौलिए से मुँह पोंछने लगता है जिससे सुरो और चिन्ती हाथ–मुँह पोंछकर गई हैं।)

मधु : (रसोईखाने से) यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने ! मनों तो मैल जमी हुई है पेंदे में। (केतली हाथ में लिए आ जाती है) तुझे कभी बर्तन न साफ़ करने आयेंगे मंगला। कितनी बार कहा है कि सफ़ाई का.... .(अचानक वसन्त को सुरो वाले तौलिए से मुँह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए) यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ?मैं पूछती हूँ आप सूखे और गीले तौलिए में भी तमीज़ नहीं कर सकते। अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पीकर इस तौलिए से हाथ पोंछकर गई हैं।

वसन्त : (घबराकर) परन्तु नया.....

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टँगा है।

वसन्त : ओह ये कमबख्त तौलिये! मुझे ध्यान ही नहीं रहता वास्तव में दोनों तौलिये साफ़ हैं, मुझे.....

मधु : जी साफ़ हैं। जरा आँख खोलकर देखिए! गीले और सूखे.....

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया.....(खिसियानी हँसी हँसता है)।

मधु : जी आपकी दुनिया। जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं। ऐनक हो तो कौनसा

आपको कुछ दिखाई देता है! (मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है)।

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया ?नाराज़ हो गई हो क्या ?

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नहीं मैं नाराज़ नहीं।

वसन्त : (चिल्लाकर) तुम्हारा खयाल है मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता।

(पर्दा सहसा गिरता है।)

शब्दार्थ–

अँगीठी – अंगारे रखने का पात्र	ऐनक–चश्मा
निपुणता – दक्षता	चर्म – चमड़ी
अरिस्टोक्रेटिक–भव्य	पख – अड़ंगा, नुक्स
विपन्न – असम्पन्न	तकल्लुफ़ – बाहरी दिखावा

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1.'स्वच्छता बुरी नहीं, पर तुम तो हर चीज को सनक की हद तक पहुँचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ है।' यह किसने, किससे कहा –

(अ) मधु ने मंगला से (ब) मधु ने वसन्त से

(स) वसन्त ने मधु से (द) मधु ने सुरो से ( )

2.सुरो और चिन्ती कौन थी ?

(अ) मधु की पड़ोसन (ब) मधु की सहेलियाँ

(स) मधु की ननद (द) मंगला की बहन ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. ऊषी और निम्मो से किसे चिढ़ थी ?
2. वसंत–मधु की नोंकझोक के दरमियान फोन पर साहब ने वसन्त को क्या आदेश दिया ?
3. सुरो और चिन्ती दिल्ली में कहाँ ठहरी थी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. चूहा सैदनशाह के लोगों की तन्दुरुस्ती का राज क्या था ?
2. मधु के मामा ने वसंत द्वारा उनका रेजर इस्तेमाल करने के पश्चात् क्या किया ?
3. मधु अपने बचपन के वातावरण व संस्कार के बारे में नौकरानी मंगला से क्या कहती है ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1.मधु व वसंत में किस बात पर वैचारिक मतभेद है ?विस्तार से लिखिए।

2.एकांकी के आधार पर आज के तड़क–भड़क व तकल्लुफ–प्रधान जीवन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।